क्या कहते हैं ? **(अब यहाँ प्रश्न होता है कि) इस प्रकार तो व्यवहारनय और निश्चयनय का विरोध आता है; अविरोध कैसे कहा जा सकता है ? इसका उत्तर दृष्टान्त द्वारा तीन गाथाओं में कहते हैं—**

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई।।५८।।

तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो।।५९।।

गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति।।६०।।

देखा लुटाते पंथ में को, 'पंथ ये लुटात है'—
जनगण कहे व्यवहार से, नहिं पंथ को लुटात है॥५८॥

त्यों वर्ण देखा जीव में इन कर्म अरु नोकर्म का।
जिनवर कहे व्यवहार से, 'यह वर्ण है इस जीव का'॥५९॥

त्यों गंध, रस, रूप, स्पर्श, तन, संस्थान इत्यादिक सबैं।
भूतार्थदृष्टा पुरुष ने, व्यवहारनय से वर्णये॥६०॥

टीका : लो, **जैसे व्यवहारीजन, मार्ग में जाते हुए किसी सार्थ (संघ) को लुटता हुआ देखकर, संघ की मार्ग में स्थिति होने से उसका उपचार करके,...** आहाहा! हमारे

तो यह अनुभव हुआ है। 'गारियाधार' से 'उमराला' जाते हुए एक 'पांदरड़ा' आता है। उसकी बड़ी नहर आती है, वह लुटाऊ नहीं कहलाती है, भाई! इतनी गहरी है, है बड़ी नहर परन्तु इतनी गहरी है और फिर ऐसे गहरे से चढ़ने का है, इसलिए बीच में कोई चोर आकर लूटे तो आसपास के लोगों को कुछ पता नहीं पड़ता। आहा...हा...! ऐसा 'पांदरड़ा' है। 'गारियाधार' से 'उमराला' जाते हुए (आता है)। हमारे साथ दूसरे थे। मेरी तो छोटी उम्र, और गाड़ा में बैठकर गये थे। दूसरे (लोग) देखने के लिये उतर गये। (पूछा) कैसे है?- कि यह मार्ग लुटता है। लुटाऊ मार्ग है। इसलिये अपने गाड़ा एकदम हाँको, और हम नीचे उतर जाते हैं तथा सामने देखते हैं। यह तो बनी हुई बात है। बहुत वर्ष की, ७५ वर्ष पहले की बात है। यह मार्ग लुटता है, ऐसा कहते हैं। यह मार्ग लुटाऊ है-ऐसा बोलते थे। क्योंकि वहाँ आगे गहरा-गहरा है। ऐसे रास्ता ऊँचा हो, इसलिए गहरा-गहरा (हो), इसलिए वहाँ चोर लूटे तो कोई बाहर में ठेठ तक आवे, तब तक पता नहीं पड़ता। लुटाऊ मार्ग है (कहे परन्तु) मार्ग लुटाऊ नहीं है। आहाहा!

देखो तो सही दृष्टान्त! उपचार करके यह मार्ग लुटता है - ऐसा कहते हैं। **तथापि निश्चय से देखा जाये तो, जो आकाश के अमुक भागस्वरूप है...** आकाश के अमुक भागस्वरूप मार्ग है। **वह मार्ग तो कुछ नहीं लुटता;...** मार्ग कहीं लुटता नहीं है। आहाहा! **इसी प्रकार भगवान अरहन्तदेव,...** सर्वज्ञ परमेश्वर, **जीव में बन्धपर्याय से स्थिति...** एक समय की बन्धपर्याय की स्थिति देखकर। आहाहा! एक समय में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, कर्म का सम्बन्ध-ऐसा एक समय है। भगवान तो त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! उसमें ये परमाणु आदि, बन्ध आदि, भेद आदि एक समय में रहनेवाले हैं। आहाहा!

जीव में बन्धपर्याय से स्थिति को प्राप्त... आहाहा! **कर्म और नोकर्म का वर्ण देखकर,...** वर्ण से लिया है न? वर्ण, गन्ध से लिया है न? इसलिए? कर्म-नोकर्म की वर्ण की बन्धपर्याय की जीव में स्थिति एक समय होने से **उसका उपचार करके,...** यह तो गति करते हुए, परिणमन करते.. करते.. करते.. आये हैं। आहा..हा..! यह आत्मा के स्वभाव में, पर्याय में गति करते एक समय (के लिये) आये हैं। परन्तु एक समय की स्थिति देखकर ये आत्मा के हैं-ऐसा कहने में आता है, वह तो व्यवहार है। आहाहा! आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा न! नियमसार... चार भाव हैं, वे आवरणसंयुक्त हैं-ऐसा कहा। आहाहा! ऐ... देवानुप्रिया! तुम्हारा सब इसमें आया है या नहीं? क्षायिकभाव, उपशमभाव, केवलज्ञान, केवलदर्शन, यह क्षायिकभाव है। उन्हें वहाँ 'आवरणसंयुक्त' कहा - ऐसा टीका में पाठ है-आवरणसंयुक्त। अर्थात् इन्हें कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है न! आहाहा! इसलिए उसे आवरणसंयुक्त गिनकर, उस भाव की भावना न करनी (-ऐसा कहा है)। आहाहा! पंचम स्वभावभाव, ध्रुवभाव, ध्रुवभाव ऐसा। आहाहा! उसकी भावना (करनी)। उसकी भावना है उपशम, क्षयोपशमभाव, परन्तु पंचम (भाव की) भावना (भाना), इस भावना की भावना नहीं। आहाहा! आहाहा! क्षायिक, क्षयोपशम आदि पर्याय है परन्तु उसकी भावना नहीं। आहा! यह तो एक क्षणिक अवस्था है। केवलज्ञान, केवलदर्शन भी... आहाहा! त्रिकाली भगवान के समक्ष एक समयमात्र स्थिति को प्राप्त है।

आहाहा! मार्ग में लुटते देखकर मार्ग लुटता है। लुटता है तो उपचार है। इसी प्रकार स्वयमेव गति, स्थिति,... उसका क्षायिकपना, क्षयोपशमपना वहाँ आया है... आहाहा! उसे आत्मा का कहना, वह तो व्यवहार उपचार है। आहाहा! गजब बात है।

जीव में एक समय की स्थिति, बन्धपर्याय की स्थिति की अपेक्षा से देखें तो वह उपचार करके कहा है। '**जीव का यह वर्ण है**'... जीव के गुणस्थान हैं। आहाहा! वहाँ एक समय की पर्याय की स्थिति है। अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा तो त्रिकाल ऐसा का ऐसा ध्रुव प्रवाह चला आता है, उसमें एक समय की ये पर्याय की अवस्थायें जो दिखती हैं, वे वास्तव में तो यह स्वयं अवस्थायें उस समय में आने की योग्यता से सब हुई है। रागादि ये सब। आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वरूप के ऊपर यह तो ऐसे गति करते-करते उनकी स्थिति-प्रमाण आये हैं परन्तु एक समय का सम्बन्ध देखकर... आहाहा! जीव के (वर्ण है ऐसा कहा)। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! पर का तो कर नहीं सकता परन्तु क्षायिक भाव की भावना करनी नहीं, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है।

पर का कर नहीं सकता, राग करता नहीं परन्तु क्षायिकभाव की पर्याय की भावना जीव नहीं करता। आहाहा! वह तो त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान अभेदस्वरूप है। यह तो

यहाँ भेद को उपाधि कहा न? और उसमें भी आया है न? '**परपरिणतिमुज्झत् खण्डय-द्भेदवादा**' (समयसार) ४७ श्लोक। आहाहा! '**परपरिणतिमुज्झत्** परन्तु **खण्डयद्भेदवादा**' उसे भी छोड़ दिया। आहाहा! कर्ताकर्म (अधिकार में है)। कर्ता-कर्म, परपरिणति। आहा! एक समय की स्थिति देखकर (इसके हैं ऐसा कहने में आता है)। है तो वे स्वयं मार्ग में चलते चलते अन्दर आये हैं, उनके मार्ग से, हों! आहाहा! परन्तु एक समय की स्थिति की अवधि देखकर, इसके हैं, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा!

यह सब सम्बन्ध जो शरीर, वाणी, कर्म, भेद, गुणस्थान... आहाहा! ये तो पलटते... पलटते... पलटते... इनके समय में समय की स्थिति उनके कारण ऐसे आये हैं परन्तु आत्मा की बन्धस्थिति की एक समय में स्थिति पाते देखकर (जीव के कहे हैं)। है तो उसके आहा! भेद, गुणस्थान हैं तो उसके-अजीव के। आहा! परन्तु भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति परमस्वभावभाव में तो ये नहीं, परन्तु उसकी पर्याय में एक समय की अवधि देखकर... आहा! व्यवहार से उसके हैं, ऐसा कहा है। हैं तो उसके (अजीव के)। इसके (जीव के) नहीं। आहाहा! राग, द्वेष, पुण्य, पाप, गुणस्थान, जीवस्थान, मार्गणास्थान, वे हैं तो उसके (अजीव के)। आहाहा! क्या शैली! भगवान तीन लोक का नाथ चैतन्य परमस्वभावभाव,... वह है तो इसका, परन्तु यहाँ एक समय की बन्ध की पर्याय की स्थिति का सम्बन्ध देखकर इसके हैं, ऐसा व्यवहार से कहा। आहाहा! ऐसी बात है प्रभु! ओहोहो!

श्रोता : आज तो आप बहुत सूक्ष्म बात फरमाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसी बात ही यह सादी भाषा में तो आती है। आहाहा!

संघ लुटता है, उसमें मार्ग लुटता है, यह कहना, वह तो उपचार है। इसी तरह इस जगत की सभी चीज़ें अजीव हैं। उनके कारण यहाँ उस प्रकार के भाव को प्राप्त होती है। आहाहा! परन्तु आत्मा को बन्ध की एक समय की स्थिति देखकर सम्बन्ध (कहा)। आहाहा! है तो भेद, भेद का; राग, राग का; कर्म, कर्म का; संहनन, संहनन का। आहाहा! परन्तु एक समय की ऐसी स्थिति देखकर (जीव का कहा है)।

प्रभु तीन लोक का नाथ ज्ञायकस्वभाव की एक समय की पर्याय में सम्बन्ध देखकर उसके हैं (ऐसा कहा)। हैं तो उसके, परन्तु इसके हैं - ऐसा एक समय की स्थिति

देखकर कहने में आता है। आहाहा! गजब काम किया है न! यह टीका! अब वह कहता है कि टीका करके दुरुह किया। भगवान! भाई! ऐसा रहने दे भाई! ऐसे अवसर में तू ऐसे अभिमान में मत जा! आहाहा!

भावलिंगी सन्त ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू तो त्रिकाली ध्रुव परमपारिणामिकस्वभावभाव तत्त्व है। आहाहा! अरे रे! वास्तव में तो यह क्षायिकभाव और क्षयोपशमभाव की भी पर्याय है उसकी... आहाहा! परन्तु एक समय की स्थिति की अपेक्षा गिनकर व्यवहार से इसका (जीव का) कहा। गजब काम किया है न! प्रभु! भगवान आत्मा अभेदस्वरूप, अभेदस्वरूप है। जिसमें पर्याय का भी भेद नहीं। आहाहा! परन्तु वह भेद एक समय की स्थिति देखकर (जीव का कहा है)। है तो भेद भेद का; है तो राग राग का; है वर्ण वर्ण का; है गुणस्थान गुणस्थान का - अजीव का। आहाहा!

भगवान चैतन्यस्वरूप परमानन्द की मूर्ति प्रभु अभेदवस्तु में एक समय के भेद को देखकर-है तो भेद भेद का; गुणस्थान, गुणस्थान का, परन्तु यहाँ एक समय का ऐसा सम्बन्ध देखकर-जीव का व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? आहाहा! जिसे क्षायिकभाव भी आवरणवाला कहा क्योंकि उसमें निमित्त की अपेक्षा आती है। भगवान का स्वभाव है, उसमें किसी निमित्त की अपेक्षा का और भाव या अभाव ऐसा कुछ है नहीं - ऐसा ज्ञायकभाव, पंचमभाव, परमात्मभाव है। आहाहा! उसे एक क्षायिकभाव को भी आवरणवाला गिनकर... आहाहा! वह आत्मा में नहीं है। आहाहा! आया है न इसमें? '**क्षायिकभाव ठाणा**' क्षायिकभाव के केवलज्ञान आदि प्रकार आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! परन्तु एक समय की क्षायिक आदि, क्षयोपशम की पर्याय का त्रिकाल के साथ एक समय का सम्बन्ध देखकर... आहाहा! बन्धपर्याय का सम्बन्ध देखकर, अबन्धस्वभावी भगवान में यह एक समय की स्थिति देखकर, इसके हैं - ऐसा व्यवहार से कहा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

'जीव का यह वर्ण है' ऐसा व्यवहार से प्रगट करते हैं, तथापि निश्चय से, सदा ही जिसका अमूर्त स्वभाव है... भगवान आत्मा का तो त्रिकाली अमूर्त स्वभाव है। अमूर्त (स्वभाव) तो धर्मास्तिकाय में (भी) है परन्तु **उपयोगगुण के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक**

है... आहाहा! जानन-देखन स्वभाव से... आहाहा! इन सब भेद आदि से अधिक अर्थात् भिन्न है। आहाहा! **उपयोगगुण के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक है...** ये सब अन्य द्रव्य कहने में आये हैं। आहाहा! नियमसार में तो क्षायिकभाव को भी परद्रव्य कहा है। आहाहा! त्रिकाली भगवान परमात्मस्वरूप ऐसा का ऐसा बिराजमान है। आहाहा! उसके अन्दर में पर्याय की एक समय की स्थिति देखकर, वह क्षायिकभाव जीव का है - ऐसा व्यवहार से कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। ओहोहो! क्या जिनेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी! और सन्तों ने... आहाहा! जगत को पंचम काल के प्राणी के समक्ष प्रसिद्ध किया है।

प्रभु! तू तो ज्ञायकस्वभाव से भरपूर ऐसा अखण्डानन्द प्रभु है न! उसमें एक समय की ये सब दशायें, क्षायिक-क्षयोपशमदशा भी एक समय की अवस्था है। आहाहा! एक समय की अवस्था का त्रिकाली में सम्बन्ध देखकर वह जीव का है - ऐसा कहा है। है नहीं इसका। आहाहा!

राग और द्वेष तो विकारीदशा है; कर्म और संहनन और संस्थान तो जड़ की दशा है परन्तु अन्दर में कर्म के निमित्त के अभाव से होनेवाली निवृत्तदशा... आहाहा! उसे भी परद्रव्य के भाव गिनकर, आत्मा में वह नहीं... तब उसे (जीव का) क्यों कहा?—कि एक समय की (स्थिति देखकर कहा)। एक ही समय (रहती है)। भगवान तो त्रिकाली प्रभु है, उसमें एक समय की स्थिति देखकर इसके हैं - ऐसा व्यवहार से कहा है। आहाहा! निश्चय से इसके नहीं। आहा! देखो! यह तीन लोक के नाथ की वाणी! आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी! आहा! गजब काम किया है! काम तो कर गये परन्तु जगत् को समझाने की शैली (भी गजब!) आहाहा!

जो विकल्प आया, उसका कर्ता नहीं और उस काल में जो क्षयोपशम की पर्याय हुई है, वह मुझमें नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि को, अभेद की दृष्टि होने पर भी पर्याय में क्षयोपशम की पर्याय हो, राग हो, (वह) है तो पर का, कहते हैं। आहाहा! भगवान! तेरी महिमा का पार नहीं, प्रभु! तू अन्दर कौन है? साक्षात् भगवान स्वरूप है!! आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु है! भाई! आहाहा! शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार परमात्मा है। उसे यह पर्यायवालाऔर ...वाला कहना, वह तो एक समय की स्थिति इसमें देखकर कहा

जाता है। आहाहा! नहीं तो वह पर्याय और रागादि सब अजीव कहे गये हैं, त्रिकाली जीव की अपेक्षा से। आहाहा! और वह भी अनुभूति के काल में कहा न! जब अखण्ड-अभेद चीज़ ऐसे जानने में आयी, ऐसे जब अनुभव हुआ, तब अनुभूति से यह सब बात भिन्न रह जाती है। आहाहा! यह समयसार! अजोड़ चक्षु है!!

श्रोता : कथंचित् वक्तव्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित वक्तव्य और कथंचित् अवक्तव्य। यह वक्तव्य कहना भी एक उपचार से है। आहाहा! वाणी के काल में वाणी निकलती है, उसमें जीव का निमित्त देखकर; निमित्त देखकर अर्थात् उसका कोई कर्तव्य नहीं। आहाहा! बहुत अलौकिक बात है प्रभु! ओहोहो! यहाँ तो अभेद चीज़ की दृष्टि में भेद है, वह भी पर का है-अजीव का है, पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! गजब काम किया है न, नाथ! यहाँ जाना, बापू! यहाँ तक। आहाहा! यह कोई अपूर्व अनन्त पुरुषार्थ है! आहाहा! शास्त्र से कोई काम पार न पड़े, शास्त्र के पठन से भी यह पार न पड़े। आहाहा!

त्रिकाली चीज़ भगवान आत्मा ध्रुव (है)। उसमें, ये स्थिति प्राप्त जगत के पदार्थ तो पर हैं, परन्तु एक समय की स्थिति का सम्बन्ध देखकर... आहाहा! व्यवहार से (इसके कहे गये हैं)। त्रिकाली में तो है नहीं, निश्चय से तो है नहीं परन्तु यह स्वयं परिणमन करते-करते एक समय की मुद्दतवाले ऐसे साथ में दिखायी दिये, इससे व्यवहार से उन्हें जीव का कहा। आहाहा! ऐसा है, भाई! यह कोई शास्त्र के पठन से यह मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! अलौकिक बात है! आहाहा! यह दिगम्बर दर्शन, वह जगत में कहीं है नहीं। यह वस्तु का स्वभाव है, वह दिगम्बर दर्शन है। आहा! क्योंकि जो त्रिकाली वस्तु है, उसमें एक समय की स्थितिवाली (वह चीज़ है), वे हुए हैं तो उनके कारण परन्तु यहाँ एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार कहे। आहाहा! अभूतार्थनय से कहे। आहाहा! भगवान आत्मा भूतार्थ प्रभु! आहाहा! भगवान का विरह पड़ा परन्तु विरह भुलावे, ऐसी यह बात है!! आहाहा! क्या शैली! क्या प्रवाह! इनकी वाणी के प्रवाह का प्रपात! आहा!

कहते हैं, प्रभु! एक बार शान्ति से सुन, भाई! तू तो अभेदस्वरूप है, वह तू है, परन्तु ये सब शरीर, वाणी, मन, भेद, गुणस्थान आदि हैं, वे हैं तो सब अजीव; वे हैं तो सब पुद्गल

के परिणाम। आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की अपेक्षा से तो वे सब अजीव हैं। आहाहा! वास्तव में तो क्षायिक और क्षयोपशमभाव पर्याय है, वह त्रिकाली की अपेक्षा से अजीव है। व्यवहार जीव हुआ न! इसलिए निश्चय से अजीव। आहाहा! वाह, प्रभु वाह! क्या इनकी शैली!! आहाहा! है तो इसके परिणमते इसके काल में वे अजीव, उसमें हैं वे तो; परन्तु यहाँ भगवान त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप प्रभु को एक समय का ऐसा सम्बन्ध है न? एक समय की स्थिति से वहाँ टिका है न? एक समय, इतनी अपेक्षा से उसे व्यवहार है। आहाहा!

श्रोता : पंचास्तिकाय में इन्हें संयोग-वियोग कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्बन्ध है न इतना! एक समय रहता है न! क्षयोपशमभाव, भेदभाव भी एक समय पर्याय में रहते हैं। त्रिकाल में नहीं, इसलिए निश्चय से (नहीं) परन्तु एक समय ऐसा सम्बन्ध है, इतना गिनकर व्यवहार से इसके कहे हैं। आहाहा! अरे! ऐसा तत्त्व सुनने को नहीं मिलता, आहाहा! और बाहर आया तो इसका विरोध करते हैं, प्रभु! परन्तु क्या हो? भाई! आहाहा! दुनिया को ऐसे व्यवहार से होता है (ऐसा कहे) तो उसे मजा आये। अरे प्रभु! आहाहा! व्यवहार—यह क्षायिकभाव है, वह व्यवहार है। आहाहा! पर्यायमात्र व्यवहार है, भाई! इस व्यवहार से निश्चय हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा!

भगवान पंचम भाव की भावना... पाठ तो ऐसा लिया है न? भाई! क्षायिक, उपशम, आदि चार भाव आवरणसंयुक्त होने से जीव के नहीं हैं। फिर कहा कि इसलिए... आहा! पंचम भाव की भावना से मोक्ष प्राप्त करते हैं, चार भाव से मोक्ष प्राप्त नहीं करते। आहाहा! मोक्ष की पर्याय, मोक्ष की पर्याय से प्राप्त नहीं करते। आहाहा! यह तो पंचम भाव जो भगवान ज्ञायक प्रभु वीतरागमूर्ति एकरूप अभेद वस्तु की भावना—पंचम भाव की भावना! भावना है तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक परन्तु भावना उसकी (स्वभाव की)। भावना की भावना नहीं! आहाहा! ऐसी बातें हैं।

एक ओर कहते हैं कि ये चार भाव जीव के नहीं। दूसरी ओर कहते हैं कि पंचम भाव की भावना से मुक्ति होती है। यह भावना है तो क्षयोपशम, उपशम परन्तु इसकी

(त्रिकाली की) भावना है; पर्याय की भावना नहीं। आहाहा! अरे रे! जिन्दगी जाती है, शरीर चला जाता है, गति बदल जाती है। उसमें यह बात नहीं समझे तो... बापू! ये सब करोड़पति और अरबोंपति, बापू! मरकर कहाँ जायेंगे? आहाहा! आहाहा! जिन्हें ऐसा सुनने को नहीं मिलता... आहाहा! उन्हें समझने का कहाँ रहा? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि पंथ का (दृष्टान्त) देकर गजब बात की है! आहाहा! लुटता है वह (संघ), परन्तु पंथ लुटता है - ऐसा उपचार से (कहा है)। क्योंकि उस पंथ में संघ की एक समय की स्थिति है न? आहा! इसी प्रकार ये सब भाव—जितना २९ बोल का घूरा कहा है न, वे सब हैं तो अजीव के, भेदभाव हैं, वे अजीव हैं। अरे रे! जीवद्रव्य नहीं, इस अपेक्षा से अजीव। एक समय की पर्याय है, वह जीवद्रव्य नहीं। पूरा जीवद्रव्य नहीं, इससे एक समय की पर्याय को भी जीवद्रव्य नहीं, अजीव है - ऐसा कहा। दूसरी भाषा से उसे परद्रव्य कहा। आहाहा!

यह स्वयं तो भगवान अमूर्त है और **उपयोगगुण के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक है...** जानन-देखन जो त्रिकाली स्वभाव भगवान, उसकी वर्तमान अनुभूति होने पर... आहाहा! आहाहा! वे अन्य द्रव्य हैं। आहाहा! गुणस्थान के भेद, लब्धिस्थान के भेद, वे अन्य द्रव्य हैं। गजब करते हैं न! आहाहा! क्षायिकभाव भी अन्य द्रव्य है। यह द्रव्य नहीं, इसलिए अन्य द्रव्य, ऐसा। त्रिकाली जो ज्ञायकभाव भगवान पूर्णानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण भण्डार... आहाहा! वह क्षायिकभाव नहीं, इसलिए वह क्षायिकभाव जीवद्रव्य नहीं। आहाहा! परन्तु आत्मा की त्रिकाली चीज़ में एक समय की स्थिति-सम्बन्ध है—ऐसा देखकर व्यवहार से आत्मा का है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! अरे! प्रभु! सन्त और गणधर जो इसके अर्थ करते होंगे... आहाहा! अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा!

इस जीव का वर्ण नहीं, गन्ध नहीं। है न? **ऐसे जीव का कोई भी वर्ण नहीं है।** गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, रूप नहीं, शरीर, संस्थान, संहनन (नहीं)। यहाँ तक तो ठीक; ये तो पर की पर्याय, यहाँ तक तो पर की पर्याय है। अब **राग, द्वेष, मोह,...** मोह अर्थात् मिथ्यात्व। आहाहा! **प्रत्यय...** अर्थात् आस्रव। **कर्म, नोकर्म...** ये चार कहे, वे भी

आत्मा के नहीं। आहाहा! कोई भी मोह, राग, द्वेष जीव के नहीं हैं। आहाहा! ये सब तो अजीव के हैं।

कर्म, नोकर्म, वर्ण, वर्गणा, स्पर्धक,... ये तो जड़ के गये। अब यहाँ तो **अध्यात्म-स्थान,...** जीव के अध्यवसाय के प्रकार, वे जीव में नहीं हैं। आहाहा! एक समय की पर्याय है; इस कारण व्यवहार से इसके कहे हैं, वस्तु में वे नहीं हैं। आहाहा! **अनुभागस्थान,..** वे तो जड़ के हैं। वे (जीव के) नहीं। **योगस्थान,...** कम्पन आदि भी आत्मद्रव्य में नहीं है। कम्पन भले इसकी पर्याय में है, परन्तु द्रव्य में (नहीं)। अजीव में जाता है। **बंधस्थान, उदयस्थान, मार्गणास्थान,...** आहाहा! मार्गणास्थान। समकित और उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक और सब मार्गणास्थान, वे जीव में नहीं हैं। आहाहा! ऐसा कहना कि इसे खोजना हो तो किस स्थिति में है, इसलिए मार्गणा कही। आहा! परन्तु वह तो पर्याय की मार्गणा कही। आहाहा! भले ज्ञान के पाँच भेद हों, समकित के भेद हों, सब आत्मा में नहीं हैं। अभेद में भेद नहीं है, भेद को तो यहाँ उपाधि में डाल दिया है। आहाहा!

स्थितिबंधस्थान,... कर्म की अवधि। **संक्लेशस्थान,...** अशुभभाव। वह अशुभभाव है तो जड़ का, परन्तु एक समय में ऐसे संक्लेश की पर्याय का सम्बन्ध है, ऐसा देखकर जीव का व्यवहार से कहा। आहाहा! यह गले उतरना, आत्मा में बैठना, हों! आहाहा! **विशुद्धिस्थान,...** शुभराग के प्रकार हैं, वे सब अजीव हैं परन्तु त्रिकाली जीव के साथ एक समय की ऐसी स्थिति-सम्बन्ध देखकर, एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से इसके कहे हैं। आहाहा!

संयमलब्धिस्थान,... आहाहा! एक समय की जो पर्याय निर्मल हुई, एक समय की देखकर इसके है, ऐसा कहा। बाकी वह स्थान जीवद्रव्य का नहीं है। आहाहा! सामने है न पुस्तक? आहाहा! यह **संयमलब्धिस्थान,...** जीव के नहीं, जीवद्रव्य के नहीं परन्तु एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से जीव के कहे गये हैं। आहाहा! वरना वे क्षयोपशम के भाव हैं, तथापि क्षयोपशम भी एक समय की अवधिवाला है। भगवान त्रिकाली के साथ एक समय की अवधि देखकर जीव का कहा है, बाकी जीवद्रव्य का है नहीं। आहाहा!

जीवस्थान... चौदह जीवस्थान—पर्याप्त-अपर्याप्त आया था न? एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय,

त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर (ऐसे) चौदह बोल। वे एक समय की स्थिति देखकर इसके (जीव के कहे), बाकी वस्तु में नहीं है। आहाहा! जीवद्रव्य में नहीं, परन्तु एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से इसके कहे हैं। आहाहा! गजब टीका! अमृतचन्द्राचार्य की टीका... आहाहा! अमृत उड़ेला है अकेला!

गुणस्थान... चौदह (गुणस्थान) वे अजीव हैं, अजीव के हैं परन्तु जीव की एक समय की पर्याय (में देखकर इसके हैं ऐसा कहा)। परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ अरिहन्तदेव जिनेश्वर परमात्मा! यह जीव के नहीं परन्तु एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से जीव के कहे हैं। आहाहा! अरिहन्तदेव सर्वज्ञ जिनेश्वर परमात्मा! ...ये जीव के नहीं परन्तु एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से जीव के कहे हैं। आहा! अब यहाँ तो शुभभाव से होता है, शुभभाव से होता है (ऐसा लोग कहते हैं)। लो! आहा! कल भाई आये थे न, मुरैनावाले, वहाँ (ऐसा कहते हैं) शुभभाव कारण है, यह शुभभाव कारण है न? अरे! प्रभु... प्रभु... प्रभु... प्रभु... वह शुभभाव है, अजीव का स्थान है, परन्तु एक समय की ऐसी पर्याय देखकर व्यवहार से कहा, उससे आत्मा का कल्याण होता (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! कल्याण तो पर्याय के आश्रय से नहीं होता। आहा! त्रिकाली पंचमभाव भगवान पूर्णानन्द प्रभु की भावना से कल्याण होता है। भले वह भावना क्षयोपशम, उपशम, क्षायिकरूप हो परन्तु भावना पंचम भाव त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... ज्ञायकभाव... आहाहा! इसके आश्रय से कल्याण होता है। पर्याय के आश्रय से पर्याय में कल्याण नहीं होता। ऐसी बात कहाँ है? आहाहा!

श्रोता : यह बात सोनगढ़ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग के घर की बात है प्रभु, हों! आहाहा! दोनों को समझाने की विधि भी कैसी, देखो न! द्रव्य में तो नहीं परन्तु तब उसे व्यवहार से कहना क्यों? एक समय का ऐसा इतना (सम्बन्ध) है न! आहाहा! इसलिए व्यवहार से कहा। आहाहा! अब ऐसी बात सुने (परन्तु) राजकीय व्यक्ति को बैठे किस प्रकार यह? भाई कान्तिभाई आये थे, ऐसा कहते थे, मोरारजी देसाई निकलनेवाले हैं। अपने को उन्हें कुछ कहना या नहीं? कहा—हमारा काम नहीं। अपने आप आवे तो भले आवें। हम यहाँ कहें नहीं कि यहाँ

आओ। यह कहाँ मार्ग ? बापू! आहाहा! अरे! जैन के बाड़ा में पड़े, उन्हें सुनना कठिन पड़ता है। आहाहा! कठिन बात, बापू!

यह सब ही (भाव) व्यवहार से अरहन्त भगवान... आहा! स्वयं कहते हैं, ऐसा नहीं कहते... आहाहा! भगवान सर्वज्ञदेव, परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है, कहते हैं। **व्यवहार से अरहन्तभगवान जीव के कहते हैं, तथापि...** ऐसा होने पर भी... आहाहा! **निश्चय से, सदा ही जिसका अमूर्त स्वभाव है...** भगवान का तो अमूर्त स्वभाव है। यह भगवान आत्मा, हों! **और जो उपयोगगुण के द्वारा अन्य से अधिक है...** इस उपयोगगुण द्वारा भेद से भी भिन्न है। आहाहा! जानन-देखन उपयोग द्वारा! वह भले जानन-देखन उपयोग त्रिकाल है परन्तु इसे वर्तमान उपयोग द्वारा इसकी ओर के जुड़ान से... आहाहा! अनुभूति से। **अन्य से अधिक है...** इस भेद से भिन्न है, राग से भिन्न है, द्वेष से भिन्न है, जीवस्थान से भिन्न, मार्गणास्थान से भिन्न है। आहाहा!

ऐसे जीव के वे सब नहीं हैं,... वे जीवद्रव्य के नहीं हैं। आहाहा! वे जीवद्रव्य में नहीं हैं। आहाहा! **क्योंकि इन वर्णादि भावों के और जीव के तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध का अभाव है।** आहाहा! क्या कहते हैं ? राग-द्वेष, गुणस्थान आदि को, जैसे उष्णता और अग्नि को तादात्म्य सम्बन्ध है, वैसे भगवान ज्ञायकस्वभाव को और इन गुणस्थान भेद को तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! एक समय की स्थिति का सम्बन्ध है, वह तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसे संयमलब्धि के स्थान जो भेद हैं, उन्हें और अभेद को तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! अब यह समयसार, एक व्यक्ति पन्द्रह दिन में पढ़ गया, बापू! भाई! आहाहा!

श्रोता : पढ़ गया न! समझ गया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ऐसा कहता है, मैं पढ़ गया। क्या पढ़ा ? बापू! इसकी एक लाईन, एक गाथा... आहा! भगवान की दिव्यध्वनि का सार है यह! अजोड़ चक्षु है!!

क्योंकि इन वर्णादि... अथवा रंग-गन्ध को तो तादात्म्य सम्बन्ध नहीं, वैसे राग-द्वेष के परिणाम और जीवद्रव्य को तादात्म्य सम्बन्ध नहीं। तत्-सम्बन्ध। परन्तु लब्धिस्थान आदि जो भाव पर्याय में इन्हें, और आत्मा को त्रिकाली तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, एक

समय की पर्याय का अनित्य सम्बन्ध है। आहाहा! **तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध का अभाव है।** भगवान ज्ञायकभाव की जो अभेद अनुभूति, उसमें वे नहीं आते। आहाहा! इसलिए उन्हें तादात्म्य सम्बन्ध लक्षण का अभाव है। आहाहा! तादात्म्य सम्बन्ध होवे तो अनुभूति में भी आना चाहिए। आहाहा! आनन्द को और भगवान को तादात्म्य सम्बन्ध है, ज्ञान को और भगवान आत्मा को तादात्म्य सम्बन्ध है कि जिससे अनुभूति में वे ज्ञान और आनन्द आते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो ५६ में नहीं कहा? रुई का दृष्टान्त देकर। दृष्टान्त पाठ में नहीं था, टीका में कहा और पाठ में तो ५७ गाथा में आया क्षीर और पानी, दूध और पानी एक जगह रहने पर भी दोनों के भाव भिन्न हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा और यह गुणस्थान आदि और यह लब्धिस्थान आदि एक क्षेत्र में रहने पर भी भाव भिन्न है। आहाहा! अब यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि व्यवहार है—साधक जीव को व्यवहार ही होता है। यह व्यवहार ही होता है? यह व्यवहार तो ज्ञायक का भान होकर, है, उसे जानने के लिये कहा। आहाहा! उसके बदले (ऐसा कहे कि) साधक को व्यवहार ही होता है, निश्चय तो सिद्ध को (होता है)। अरे... प्रभु! क्या किया यह तूने? अरे!

भावार्थ - ये वर्ण से लेकर गुणस्थान पर्यन्त भाव... (उनतीस) **सिद्धान्त में जीव के कहे हैं, वे व्यवहारनय से कहे हैं,...** एक समय की पर्याय का सम्बन्ध देखकर। **निश्चयनय से वे जीव के नहीं हैं,...** द्रव्यस्वभाव में वे नहीं हैं। **क्योंकि जीव तो परमार्थ से उपयोगस्वरूप है।** वह तो ज्ञान-दर्शन के उपयोगस्वरूप है, उसमें भेद कहाँ से आये? आहाहा! उसमें ये गुणस्थान और जीवस्थान और मार्गणास्थान कहाँ से आये? कहते हैं। आहा! गजब टीका की है न। कुन्दकुन्दाचार्य! कुन्दकुन्दाचार्य ने महान, गहन, गम्भीर गाथा (रची है)। इसका टीकाकार ने स्पष्ट किया, तब वे कहते हैं कि 'दुरुह' कर डाला। भगवान.. भगवान.. भगवान..! प्रभु.. प्रभु! तू क्या करता है? भाई! वे आचार्य हैं। समर्थ आचार्य परमेष्ठी हैं। कुन्दकुन्दाचार्य के कथनों को परमेष्ठी ने स्पष्ट किया है, उन्हें ऐसा नहीं कहा जाता। उन्होंने 'दुरुह' कर डाला, प्रभु! ऐसा नहीं कहा जाता। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है, ऐसा कहा जाता है। आहा! प्रभु, प्रभु! क्या करता है? भाई! आहाहा! आहाहा! यह

दुनिया मान और सम्मान और ऐसा, हा... हो... (करे) बापू! पड़े रहोगे, भाई! आहा! यह शल्य लेकर जो पड़ा है, वह चला जायेगा अन्दर से! आहाहा! दुनिया महिमा करे, दुनिया माने कि आहा... आहा... आहा...! वह कोई साथ नहीं आयेगा वहाँ। आहाहा!

श्रोता : आचार्य ने उपकार माना है कि आप महाविदेह जाकर ऐसा न लाये होते तो हम कहाँ से पाते?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, कहा न! देवसेनाचार्य (ने कहा)। अहो! भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य न गये होते तो हम मुनिपना कैसे पाते? आहाहा! यह शैली... अनुभव और चारित्र तो था परन्तु वहाँ भगवान के पास साक्षात् गये। आहाहा! भले क्षायिक न हुआ परन्तु अप्रतिहत सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो गया। आहाहा! उनके वे सम्यग्दर्शन-ज्ञान से आगे जाकर केवल (ज्ञान) प्राप्त करेंगे।

यह यहाँ कहते हैं, अरहन्तदेवों ने व्यवहार से कहा है। **यहाँ ऐसा जानना कि — पहले व्यवहारनय को असत्यार्थ कहा था...** ग्यारह गाथा में झूठा कहा था। **सो वहाँ ऐसा न समझना कि वह सर्वथा असत्यार्थ है,...** यह पर्याय नहीं ही, गुणस्थान नहीं ही, पर्याय में नहीं ही - ऐसा नहीं जानना। पर्याय असत्यार्थ कही कि वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से उसे असत्यार्थ कहकर गौण करके असत्यार्थ कहा। आहाहा! पर्याय में भेद गुणस्थान आदि की पर्याय है। व्यवहार झूठा है, अर्थात् वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से उसे झूठा कहा परन्तु वर्तमान की अपेक्षा से व्यवहार है, सत्य है। आहा! है अर्थात् सत्य, हों! आश्रय करनेयोग्य है, यह प्रश्न यहाँ नहीं। आहा!

वहाँ ऐसा नहीं समझना कि सर्वथा झूठा ही है, पर्याय है ही नहीं। गुणस्थान और ये सब पर्याय में है ही नहीं - ऐसा नहीं समझना। **कथंचित् असत्यार्थ जानना; क्योंकि जब एक द्रव्य को भिन्न, पर्यायों से अभेदरूप,...** आहाहा! **उसके असाधारण गुणमात्र को प्रधान करके...** त्रिकाली गुण को मुख्य गिनकर। **कहा जाता है, तब परस्पर द्रव्यों का निमित्तनैमित्तिकभाव...** निमित्तनैमित्तिकभाव रागादि, भेद आदि **तथा निमित्त से होनेवाले पर्यायें - वे सब गौण हो जाते हैं,...** गौण हो जाती है, अभाव हो जाती है - ऐसा नहीं; नहीं - ऐसा नहीं। आहाहा! गौण होकर उन्हें झूठा कहा है। आहाहा!

देखो! वहाँ लिया था न भाई! पर्याय को अभूतार्थ कहा, वह तो गौण करके कहा। ग्यारह (गाथा) में अर्थ लिया था। वह ये ही (अर्थ करनेवाले) पण्डित जयचन्द (हैं)। आहाहा! वेदान्त की तरह पर्याय नहीं, जीव में नहीं, द्रव्य में (नहीं); इसलिए पर्याय में पर्याय नहीं - ऐसा नहीं है। आहाहा! **पर्यायों से अभेदरूप,...** पर से भिन्न और **उसके असाधारण गुणमात्र...** (अर्थात्) त्रिकाली उपयोग। **प्रधान करके कहा जाता है, तब परस्पर द्रव्यों का निमित्तनैमित्तिकभाव तथा निमित्त से होनेवाले पर्यायें - वे सब गौण हो जाते हैं,...** अभाव हो जाते हैं - ऐसा नहीं; गौण हो जाते हैं। **वे एक अभेदद्रव्य की दृष्टि में वे...** आहाहा! ज्ञायकभाव के अनुभव की अभेददृष्टि में **वे प्रतिभासित नहीं होते,...** यह आ गया न? (३७) कलश आ गया है। **'नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्।'** अभेद चैतन्यवस्तु का अनुभव होने पर, उसमें—अभेद में वे भेद दिखायी नहीं देते। आहाहा!

इसलिए वे सब उस द्रव्य में नहीं हैं। इस प्रकार कथंचित् निषेध किया जाता है। पर्याय नहीं है - ऐसा नहीं है। अभेद में भेद दिखायी नहीं देता, इस अपेक्षा से उन्हें कथंचित् निषेध किया जाता है। **यदि उन भावों को उस द्रव्य में कहा जाये...** पर्याय अपेक्षा से, पर्याय अपेक्षा से, **तो वह व्यवहारनय से कहा जा सकता है...** आहाहा! गुणस्थान, जीवस्थान, मार्गणा, भेदस्थान व्यवहार से इसमें (जीव में) कहे जाते हैं। यह व्यवहार से.. असत्यार्थ कहा था परन्तु व्यवहार से सत्यार्थ इतनी स्थिति है - ऐसा कहा जाता है। आहाहा! **ऐसा नयविभाग है।** व्यवहार की और निश्चयनय की विभाजन की यह अविरोधता है।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)